पोटली

रजनी गुप्ता

पोटली

ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर लंबे-लंबे डग भरता अनिल कस्बे के सरदार पटेल इंटर कॉलेज के पिछवाड़े पहुँच थोड़ी देर तक यूँ ही उचाट मन से कॉलेज की तरफ देखता रहा फिर एक टीले पर बैठ गया। उजाड़ मन में हताशा के काले बादल घुमड़ने लगे। थोड़ी देर तक यूँ ही आँखें नीचे किए गुमसुम बैठा रहा फिर बेमतलब की बातें याद आने लगीं। इसी कॉलेज से हाईस्कूल पास करने की कोई धुँधली सी याद आँखों के सामने जुगनू की तरह टिमटिमाने लगी। चंद मिनट बाद मन के किसी कोने में यादों के टिमटिमाते

दीए की लौ भी फक्क से बुझ गई। धुप्प अँधेरे में चारों तरफ पसरी खामोशी के बीच साँय-साँय करते सन्नाटे के बीच झींगुरों की आवाजें आने लगी। अपमान से जले मन पर पड़े फुलों से बूँद-बूँद रिसते दर्द को वह गुटकता रहा। आँखों से टपकती गर्म बूँदों को अपने दाहिने हाथ की आस्तीन से पौंछते हुए और नाक से टपकते पानी को सूसू कर सुड़कते हुए उसने गर्दन उठाकर ऊपर आसमान की तरफ देखा। मन की तहों में जबरन दबाया आक्रोश अंधड़ जैसी ताकत से बाहर आने को फड़फड़ा उठा। कौन है उसके दुख को समझने-बाँटने वाला? दूर-दूर तक कोई भी अपना सा चेहरा नहीं सूझ रहा।

तीन-चार बीघे की छोटी सी खेती के लिए वह कहाँ से जुटाए खाद, बीज, पानी? सूखकर पपड़ी बनी बंजर जमीन से क्या उपज पाएगा भला? सिवाय निराशा के। ऊपर से आँखमिचौनी करती बिजली और बूँद-बूँद टपकता पानी... सोचते हुए उसने पास पड़े मिट्टी के ढेले को उठाया और भुरभुराकर नीचे फेंक दिया। करे तो क्या करे वह? कहाँ भाग जाए? घर? जहाँ दीवारों से झड़ती मिट्टी, चूने की तरह बेपरदा होती गरीबी और वक्त बेवक्त गालीगलौज करती चीखती-चिल्लाती अम्मा का रौद्र रूप। उफ! माँ को वो चंडीनुमा रूप याद करते ही तन-बदन में काँटे उगने लगते। हथोड़े सी ठुकती आवाजें कानों में हर वक्त बजा करती, चाहे ये शरीर कहीं भी रहे लेकिन वे तेजाबी बातें ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे चारों तरफ से पिछियाती रहतीं। एक मुँह से निकलती हजार बातें तेज बारिश के बीच पड़ते ओलों जैसी चोट पहुँचाती।

'नासपीटे, उठाईगीरों जैसौ डोलत-फिरत इतै-उतै, जा, चलहट जा मेरी निगाहों से। सारौ, कमीन, कछु करबे-धरबे को नइयाँ।' अम्मा पूरी हिकारत उड़ेलती टोन में ताने मारने से नहीं चूकती।

'तो का करन लगै, तुम्हीं बताओ, कहाँ चले जाएँ? कब से कह रहे कि कुछ पैसा दो तो अपना काम-धंधा शुरू करें। देखो, हमारे साथ के सुरेश ने टेंपो चलवाना शुरू कर दिया। हम भी तो वही सब करना चाह रय।'

'काय रे, तोसे पैसा माँगबे के अलावा कछु और बात नई सूझत। इतेक बड़ौ शरीर दव भगवान नै। अरे, कौनउ दुकान पे मुनीमगिरी करन लगो। नई तो, नौकर हो जाव। तखरिया बाँट तौलन लगो। का हर्जा?'

'नौकर, हुँह, नौकर बन जाएँ हम? हम तो बीए कौ फार्म भरबे की सोच रय ते।'

'काय रे, को भरहे तेरी फीस? सुन लै, कान खोलके, हमारे पास नहीं है फूटी कौड़ी।' धोती के छोर को खौंसते हुए तेज मिर्ची सा तीखापन जलाने लगा उसे।

'तो फिर ब्याह काय जल्दी से करौ? गले से घंटी काय लटका दई? कितनी बार मना किया था मगर तब तो दहेज कौ पैसा दिख रय तौ आप लोगन खों...' गुस्से की ज्यादती में उखड़ पड़ा वह।

'बड़ों की बातों में टाँग अड़ाना सीख गया ससुरा। कैसी कैंची जैसी जुबान चलान लगौ हरामी की।' फिर से एक भद्दी सी गाली निकालते हुए पिच्च से थूक दिया वहीं पास वाली दीवार पर।

भारी और क्लांत मन में दबाई पुरानी बातें पैबंद की तरह यहाँ-वहाँ से खुलने लगी। उस दिन पत्नी सुधा आँचल ढाँपे महीने भर के बच्चे को दूध पिला रही थी तभी माँ की हुड़कती आवाजों से दहल उठी।

'महारानी जी, उठ कै कुआँ से पानी भर लियाव। मौंड़ा खौं लाड़-दुलार कर दो बंद अब। इतै-उतै ताकबे में का धरौ?' मुँह मटकाकर जलाने वाली बातों से सुलग उठी वह और उसी क्षण बच्चे को छाती से हटाकर खड़ी हो गई तो बच्चा चीख पड़ा। उसके मुँह से अनायास निकल गया था - 'अरे, क्यों रुला रही हो उसे?' कहते हुए उसने उस मासूम को उठा लिया और उसे अपराधबोध सालने लगा। बच्चा बेचारा इन झमेलों को क्या समझेगा? फिर पिछियाते शिकार सी दुबकती सुधा के बारे में सोचने लगा।

झिन्ना सा चिथड़ेनुमा ब्लाउज और मटमैली भूरे रंग की साड़ी देखकर कई बार मन किया कि एक नई खरीद दूँ लेकिन कैसे? किसी से पैसे माँगकर खरी दूँ तो अम्मा कच्चा चबा डालेंगी उसे। कुएँ से पानी खींचती सुधा को देखकर मन में एक हूक सी उठी। कितनी सुंदर काया थी इसकी। खुलते चाँद जैसी गोराई वाला रंग किस कदर मुरझाए पत्तों जैसा निस्तेज और बेरौनक हो गया। भोली आँखें आज बात-बात पर पनीली होने लगतीं। सोच-सोचकर अनिल के दिमाग में फिर वही किच-किच की आवाजें भन्नाने लगीं - 'कैसे चलहैं जौ घर? दो-दो जवान लोग लुगाई हाथ पै हाथ धरै दोऊ टैम रोटी तोड़त रत...,

सुनते ही खून खौलने लगा और अपमान से लाल-पीला मुँह लिए वह सर्र से बाहर निकल आया। मुंडेर पर बैठा कौआ उसकी तेज चाल से फुर्र से उड़ गया। वह कस्बे की उन कच्ची पक्की पगडंडियों से चलता गुजरता रहा। अम्मा की ताव भरी बातें मक्खी की तरह भिनभिनाती रहीं - 'देखौ तो, कोनउ लाज शरम नहीं बची आजकल के

लड़कन में। इत्ती जोर से खिलखिलाकर हँस रय ते दोउ जने। हाय राम, कैसी तो बेशरमाई लाद लई उनने?' मुँह बिचकाती अम्मा थोड़ी देर रुककर फिर से झल्ला पड़ी - 'हमाई खोपड़ी पै बैटकर कब तक मूतेंगे ये? सारा मान-सम्मान रौंद के रख दिया इस बुढ़िया ने। अंदर की समूची ताकत बटोरकर बीच में ही कूद पड़ा था उस दिन - 'अम्मा, जब जा बंजर जमीन से कछू उपजत नहीं तो बैंच काय नई देती वाय। बैंच के कर दो मकान कौ कर्जा चुकता। आजकल तो सभी लोग अपनी जमीन बेचके चक्क कटा रय और कितने अच्छे दाम भी तो मिलने लगे जमीन बेचने के। साहू जी ने बीस लाख में बेची अपनी जमीन और सारे पैसा बैंक में जमा करके घर बैठकर ब्याज से आराम से जिंदगी गुजरबसर कर रय। बोलो, गलत कै रय का?'

'खबरदार! जौ धरती मैया को बेचबै की बात फिर कभऊ और करीं। अरे! मइया है जौं धरती। वाय-बैच के पैसा सै बीवी संग गुलछर्रे उड़ाने के सपने देख रहा कुजात। निठल्ला बैठो रहत दिन रात सो जेई उल्टी-सीधी बातें खोपड़ी में आउती रैती।' बापू भी तैश में आ गए उस दिन।

'जमीन बैचबे की बात सुन लई अपने कानन से। भूल गए, वा अखिलेंद्र ने जमीन बैच कै स्कूल खुलवाय तौ हतौ, फिर का भव वा के संगे? पतौ है कै नई? वौ स्कूल नई चल पा रव। अब वौ न इतै कौ रय, न उतै को। जमीन से भी गय फिर का कर लैहे, बताओ?'

हल्ला-गुल्ला सुनकर खटोले पर सोता बच्चा रोने लगा तो सुधा ने घूँघट की ओट किए धोती का छोर उड़ा रोते बच्चे के मुँह में दूध लगा दिया। आँगन में एल्यूमीनियम के बर्तनों का ढेर लगा था। चूल्हे की आँच धीमी पड़ चुकी थी। पाँचेक मिनट बाद सास ने सुधा को घूरकर देखा और ऐंठकर बोली - 'अरे जई भड़का रई हमाय बेटा खों। जई तो शह दै रई कै बड़े शहर चलो। काय, गलत कै रय हम?' सहमति के लिए पति की तरफ देखा जिनके अंगारे सी दहकती आँखों में वीभत्स चित्र उभरने लगे।

इनै-जितै जाना होय सो चले जाएँ। को रोक रव इन्हें?'

'हाँ-हाँ, चले जैहे हम हमेशा के लाने। फिर चैन की बाँसुरी बजाना और पटाते रहना कर्जा।' चबा-चबाकर बोला गया एक-एक शब्द सुधा के कलेजे में धँसता गया लेकिन सास-ससुर के सामने जुबान में ताले पड़ गए मर्यादा के, लाज के। बड़ों के बीच में बोलना ठीक नहीं, सोचकर चुप लगा गई।

'अरे जा, चला जा, जहाँ मन आए। हम नहीं डरते इन गीदड़ भभकियों से। किसी और को चराना। समझे?

डपटकर कहे कठोर शब्दों ने कोड़े की तरह खाल उधेड़ डाली संबंधों की वह खूब अंदर तक लहुलुहान हो गया। जमीन में रोपे पौधों की तरह खूब अंदर तक जड़ें जमाती गई वे बातें। इतनी दुत्कार, उसे दो कौड़ी का समझ लतिया रहा है बाप और वो भी सुधा के सामने। छिः-छिः शर्म और ग्लानि से अकुलाहट होने लगी। डूब के चुल्लू भर पानी में मर जाना चाहिए। कही भी मुँह दिखाने लायक औकात नहीं बची अब तो। निराशा ने जकड़ लिया उसे। बेकार है मेरा जीना। सारे संबंध जंग खा चुके हैं। अब तो इतने पैसे भी नहीं बचे कि मौत खरीद सकूँ। किसके लिए जिए वह? सोचते हुए सुधा का निर्मल चेहरा याद आया लेकिन मन निराशा की खाईं में उतरने लगा। उस बेचारी को अभी कौन सा सुख दे पा रहा है वह? सारे सपने एक-एक करके खोते जा रहे हैं।

कल ही तो सुधा को प्यार करते वक्त उसने वादा किया था कि अब हम झाँसी चलकर रहेंगे तो आश्चर्य भरी आँखों से टुकुर-टुकुर ताकने लगी थी उसे - 'अम्मा-पिताजी रहने देंगे हमें? वहाँ, वैसे हमारा मन तो है...।

'अपने हिस्से की जमीन बैच के चाय की कैंटीन खोलेंगे जहाँ श्यामू बैठता है या किसी कपड़े की दुकान पर मुनीमी कर लेंगे लेकिन पहले दो पैसा तो हाथ में हों मगर बापू तो जमीन बेचने ही नहीं दे रहे। क्या करें? तुम्ही बताओ कुछ...।'

'हम का करें? कहकर थोड़ी देर रुकी फिर बोली - 'कछू पैसा मायके से माँगकर देखें... क्या बुराई है?

'अरे नई, बेकार की बातें मत सोचो। ससुराल में नाक कट जाएगी। इज्जत माटी में मिल जाएगी। क्या सोचेंगे वो हमारे बारे में? कि हम इतने गए-गुजरे हैं...।'

'कुछ नहीं सोचेंगे। कर्जा कहकर ले लेंगे। देखो, उस तुम्हारे दोस्त ने ससुराल से पैसा माँगकर टेंपो खरीद लिया और अब हर महीने पटा रहा है कर्जा? बोलो, गलत कै रय का? वहाँ रह कै हम भी कछु कर लैहे। देखा सुमन जिज्जी 15 रुपये बंडल के हिसाब से अगरबत्तियाँ बनाने लगीं तो सागर वाली लिफाफा बनाबो सीख गई और बगल वाली शुक्लाइन तो सालों से बीड़ियाँ बनाकर अपने परिवार कौ पेट पाल रई सो जामें कौन सी गलत बात है? काहे की लाजशरम? हम भी अगरबत्ती बनाने की सोच रय,' वो अपनी ही रौ में लगातार बोलती जा रही थी।

'सुधा, कभी मैं न रहूँ तो तुम अपने मायके चली जाना। गुजर-बसर कर लोगी तुम, इतना हम जानते हैं।' दुविधा से घिरे अनिल के दिमाग में अनायास रघुवीरा का चेहरा कौंध गया जिसने रोते-रोते भरभराकर कहा था उससे - घर में खाने को कुछ नहीं

बचा। बस आधा सेर महुआ है। माँ-बाप और चार भाई-बहन। बीमार बाप को शहर के बड़े अस्पताल में दिखाने लायक पैसे नहीं है। अम्मा तो पत्ते तोड़कर लाती थी, उनका भी तगड़ा खरीदार नहीं बचा। सारे सपने खाक हो चुके अनिल। कल उधारी करके आटा लाया था लेकिन आगे क्या होगा? मन में आया कि जेब में पड़े बीस रुपये उसे दे दें लेकिन उसने बस पाँच रुपये लेकर बाकी वापस लौटा दिए। हमें क्या पता कि वो इससे सल्फास की टिकिया खरीद लेगा। अगले ही दिन छन्न से टूटा था बहुत कुछ अंदर ही अंदर जब पता चला कि रघुवीरा ने सल्फास खाकर खुदकुशी कर ली। गुस्से और आक्रोश से तन-बदन सुलग उठा लगा जैसे उसी के शरीर का कोई अंग कट गया हो। जीन की इच्छा मरती गई। दिन भर वह छत की टूटी खटिया पर औंधे मुँह लेटा रघुवीरा की यादों के भँवर में गोता लगाता रहा जो उसके संग कंचे, गुल्ली-डंडा और खो-खों में हमेशा उसे हराता था लेकिन जल्दी ही उसे पढ़ाई छोड़कर काम-धंधा पकड़ना पड़ा फिर भी ठीक से गुजारा नहीं हो पाता था।

'ये, कहाँ खो गए? कब से हमारी बातों का जवाब नहीं दै रय। और अब जे कैसी बहकी-बहकी बातें करन लगे तुम तो? अरे, हमाय अकेले का बूते कुछ भी नहीं। तुम संग में रहोगे तबई कछु कर पैहे।'

सुधा को देखकर अपनेपन की चमक जरूर उसकी आँखों में कौंधी लेकिन उसकी बातें अनसुनी कर दी। मोमबत्ती सा टिमटिमाता मन तेज हवा से पलक झपकते ही बुझने वाला बनता गया।

'का सोचत रत तुम? बात बताओ तो सही।'

'सुधा, अब और जीने की इच्छा नहीं बची। बहुत नरक झेल चुका। मन करता है, सब छोड़छाड़ कर भाग जाऊँ कहीं...।'

'कहाँ जाओगे भागकर इस नरक से? देखो, परेशान कौन नहीं है यहाँ? लाइट गोल रहती है और पानी आता नहीं सो हरदम कुआँ से पानी खीचते रहो। हमारे घर के बगल में जो घूर है और कच्ची गली के पास वाली तलैया में हमेशा बदबूदार पानी संडास छोड़ता रहता। थोड़ा सा अँधेरा हुआ नहीं कि मच्छरों की रेलमपेल शुरू।'

'सुधा, तुम्हारे चाचा तो जंगल से जड़ी बूटी बीनकर शहर में बेचते थे? उनसे ठीक-ठाक पैसा का जुगाड़ हो जाता था' प्रश्नातुर आँखें टिक गई उस पर।

'वहाँ भी धाँधली ने जड़ें जमा ली। कहीं गति नहीं। वे उन्हें बीस रुपैया पकड़ा के खुद उसे ढाई-तीन सौ तक बेच लेते थे। ज्यादा बोलो तो गुंडागर्दी पर उतारू। उनकी पहुँच ऊपर नेताओं तक। लंबी साँठ-गाँठ चल रही वहाँ भी। सच्ची में, ये बूढ़े-पुराने लोग तो भाग्य को दोष देकर किसी तरह जी लेते मगर सबसे ज्यादा फजीहत तो हम लोगन पै है।'

'मरते भी तो हमीं लोग है सल्फास खाकर। रोज ही कोई न कोई खबर कानों में पड़ जाती...।'

'कैसी बातें कर रय आज तुम? हर तरफ जे मरबे-मरबे की बातें सुनकर कान पक गय हमाय तो।'

'जब सब तरफ से थक हार-जाए तो आदमी क्या करे? फिर तो बस यही सूझता है कि हम भी एक टिकिया खा लें और... न रहे बाँस, न रहे। भाड़ में जाए दुनियादारी।' मन में छिपी बातें उसके होठों पर अनायास आ गई जिसे सुनकर वह सकते में आ गई और लाड़ जताती टोन में बोली - 'तुमाई जान के संगे दो जने और हैं पीछे, सो काय जे उल्टी-सीधी बातें सोचन लगे... कहते हुए एक हाथ गले में डाल दिया तो हाथ झटकते हुए वह उखड़ पड़ा - 'अरे! मेरे रहते ही कौन से सुखसेज पर सो रही हो तुम? दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह काम में जुटी रहती और खाने के नाम पर मिलती हैं बेहिसाब गालियाँ।' बोलते-बोलते गुस्से से भक-भक जलने लगी आँखें।

'सुनो, अब फिजूल की बातें सोचना बंद करो। कल दद्दू की दुकान पर चाय-बिस्कुटों के पैकेट यहाँ-वहाँ के गाँवों तक पहुँचाने की बात तय कर लो। वो दो सौ रुपये महीने के देने की बात कर रहा था और कमीशन अलग से। मैंने भी अगरबत्ती बनाने की बात तय कर ली।'

'यानी ऊँट के मुँह में जीरा।' बात को बीच में काटकर बोल पड़ा वह।

'कुछ न करने से कुछ तो करना अच्छा। ये, तुम्हें हमारी कसम, हिम्मत न हारियो।' कहते हुए अनिल की हथेलियों और रूखे उड़ते बालों पर अपना नाजुक हाथ फेरने लगी। सुधा की निकटता से संबंधों में नई उष्मा पाकर मन में थोड़ी हिम्मत बँधी और दिमाग में आए कुविचारों को परे झटक उसने अपने आगोश में भर लिया पत्नी को। आधी रात के नीरव सन्नाटे में हल्की हवा के अहसास तले आँखें मींच ली उसने लेकिन विकल मन बिना डोर के घोड़े जैसा सरपट दौड़ने लगा। कभी एकदम सुदूर अतीत के छोर को पकड़ने लगता जब अपने पुश्तैनी गाँव के घर छोड़कर वह इस कस्बे में शिफ्ट

किया था। बड़े सपने दिखाकर लाया था बाप - वहाँ के शानदार स्कूलों में पढ़ोगे तो काम-धंधे से लग जाओगे। लाइट-पंखे जैसी सुविधाओं में ठाठ की जिंदगी जिओगे बच्चू। कुछ नहीं तो शहर की मुनीमी में ही तीन-चार हजार महीने के मिल जाएँगे। उसके साथ के कई सारे लोग गाँव के गाँव खालीकर पास के कस्बेनुमा शहर में शिफ्ट होते गए।

बच्चों की जिंदगी को बनाने की खातिर और खेती-बाड़ी में उतना फायदा होते न देखकर ज्यादातर लोग मतलब भर की जमीन बेचकर कस्बेनुमा शहर में दो कमरों का मकान बनवाकर रहने लगे। अनिल के पिता को सनक सवार थी कि घर बनवाऊँगा तो कायदे का सो बैंक से कर्जा उठा लिया जिसकी किस्तें देते-देते ही घर चलाना भारी पड़ने लगा। बचा-खुचा पैसा फूँक डाला इसे दुमंजिला बनवाने में, अब चाटो, घर को साला। एक-एक रोटी को तरसा दिया बुड्ढे ने। हर वक्त एक ही दलील देता था कि अच्छा किराया आएगा मगर पहले तो ढंग के किराएदार नहीं मिले और जो मिले भी वे बस दो हजार दे पाते हैं जबकि लोन की किस्तें देने में पसीना छूटने लगता। सच तो ये है कि बिना पैसों के कोई योजना बन ही नहीं पाती। पैसा कितनी बड़ी चीज है, शायद आज के जमाने में सब कुछ, सोचते-सोचते भावुक मन की परतें छिलती रहीं। सूरज की पीली किरणों से बेखबर वह देर तक सोता रहा। थोड़ी देर बाद अम्मा की तेज आवाजों से नींद टूटी - 'धरे रव खटिया पै। पसारे रव टाँगें। बैठे-बैठे रोटी तोड़बे की आदत पड़ गई जाकी तौ।'

फिर वही उपेक्षा और तिरस्कार भरे बोल सुनकर घुटन की लपटें ऊँची होकर झुलसाने लगी उसे। सुनकर सर्र से एक झटके से नीचे उतर कर घर के बाहर बने चबूतरे पर खड़ा हो गया। मटमैले फीके आसमान की तरफ कुछ पंछी पंख फैलाए उड़ते जा रहे थे। सूखे होठों पर जीभ फिराते हुए अनिल ने थूक अंदर धकियाया। बाहर बने कुएँ से पानी खींचती औरतों को और कुल्ला-दातुन करते लोगों को देखा। कुल्ला के लिए पानी लेने वह घिनौची की तरफ पहुँचा जहाँ सुधा ढेर सारे काले बर्तनों को साफ करने में जुटी थी। सामने वाले पड़ोसी से बतियाते बापू को देखा तो अचानक कुछ याद आया - 'आपको जो हमने सौ का नोट दिया था, दे-दो, जरा जरूरी काम है।'

'तूने दिए थे? कब? दिए होंगे तो रोटी नहीं गटकी क्या? फाके कर रहा था क्या? सुबह-सुबह माथा खराब करने आ गया। सौ रुपये न होकर हजार दिए हों जैसे। कमा के दै रव का? कैसी भिखमंगी औलाद हैं, बेशरम कहीं का...' आँखें निकालते हुए सुबह-सुबह जोर से फटकार लगाई।

'ठीक है, ठीक है मत दो। चुप्प रहो। आइंदा से नहीं माँगूगा, कभी भी चाहे जान निकल जाए। सारी जिंदगानी नरक बनाकर रख दी। मुझे, अपने बेटे को भिखमंगा कहते जरा भी शर्म नहीं आ रही?' फिर उफनते गुस्से में चिल्ला पड़ा - 'कैसे माँ बाप मिले हैं मुझे। हर वक्त काटने को तैयार। हे भगवान, ऐसे माँ-बाप किसी दुश्मन के भी न हों।' जो जी में आया सो बकता गया वो।

'बड़ी नाक वाला बना फिरता है, चला जा, जहाँ जाना हो। कौन रोकता है? सुन लो दोउ जने कान खोलकर। यहाँ रहना है तो कमाकर लाना होगा। फोकट का खाने को नहीं मिलेगा यहाँ। हमें तो कर्जा पटाना पड़ता है, नहीं बचते पैसा तो क्या करें? मर जाएँ हम? कहाँ से पूरा करें तुम्हारे खर्चा? नहीं है हमारी गुंजाइश, साफ बात है। खबरदार! जो आइंदा ऐसे लफ्ज मुँह से निकाले, हाँ, कहे देता हूँ। कायदे से सुन, समझ लो।' दोटूक लहजे में अपनी बात कहकर वे भीतर घुस गए।

छन्न-छन्न, ऐसा लगा जैसे किसी गर्म तवे पर उसका पैर पड़ गया हो। या किसी ने उसके ऊपर तेजाब छिड़क दिया हो। आँखों की कोर से गिर पड़ी चंद गर्म बूँदें जैसे कोई पीड़ा मोम बनकर रिस-रिस कर बहती जा रही हो। अंतस की पीड़ा टुकड़ों में चिटकते कोयले की तरह राख हो गई। रोज-रोज की खाक होती जिंदगी से एक बार खाक होना भला, जैसी सोच प्रबलता से आकर प्रकार लेने लगी। दिमाग में ओखली की तरह कोई जोर-जोर से कूटने-पीसने लगा। जीने की इच्छा कपूर की तरह फुर्र हो गई। धुआँता कड़वा कसैला मन और पस्त चेहरे पर टँगी बेसहारा दो जोड़ी आँखें। सल्फास खाने की सोचकर भय की झुरझुरी समूची देह में व्याप गई। अनिश्चय भरे कुछ पल यूँ ही सरक गए फिर मन को मजबूत किया। बेआवाज बेआँसू सिसकने का मन किया। मरने की बात सोचकर दहशत होने लगी। माथे पर पसीना चुहचुहाने लगा। लगा जैसे बस आखिरी सीढ़ी टूटते ही किसी गहरी खाई में गिरता जा रहा है वह। हाथ पैर, आँख कान सब सुन्न। किसी को लेना देना नहीं रहा मुझसे। सोचते सोचते चलता रहा और जब थक गया तो स्टेशन के पास बनी पुलिया पर बैठ गया। आँखों के सामने ढेर सारी लाल मिट्टी, धूप खाती झाड़ियाँ, सूखे उजाड़ पेड़ के नीचे जमीन पर गिरे धूल खाते पीले मुरझाए पत्तों जैसी है उसकी औकात। बस आज ही अंतिम फैसला लेना होगा, तभी सुधा और बच्चे की सूरत याद आने लगी। उहापोह भरे लमहों में लगा जैसे वह किसी अँधेरे कुएँ में पड़ा छअपटा रहा है और कोशिश करके भी सहारे के लिए कोई दीवार नहीं दिख रही।

उसके पैरों के नीचे दलदल है और जहाँ भी हाथ बढ़ाता है, दीवारें गायब। तभी कोई सुकोमल छुअन से चैंककर आँखें खोली। सुधा, अरे! ये तो सुधा है, उसे देखकर हारे

सिपाही की तरह जोर-जोर से रोने का मन किया लेकिन हताशा से पथराई आँखें मुंद गई अनायास। सुधा ने बड़ी नरमाई से उसकी हथेली पर रेशमी कपड़े से लिपटी एक छोटी सी पोटली थमाते हुए कहा - 'सुनो, इसमें मेरी सोने की चेन, पायलें, करधनी, नथ और चांदी के कुछ सिक्के हैं। तुम अब एक मिनट की भी देरी मत करो। इन्हें लेकर पास के शहर झांसी में चले जाओ और अपना एक नया टेंपो खरीद लो। वहाँ तुम्हारे साथ का सुरेश भी तो अपने गाँव का घर दुवार बेचकर टेंपो चलाने का काम कर रहा है। क्यों नहीं तुम भी वही काम शुरू करते? नहीं सुननी हमें किसी की खरी खोटी बातें। अभी हमारी जिंदगी खत्म नहीं हुई बल्कि अभी तो हमें नए सिरे से शुरू करनी हैं अपनी जिंदगी। जाओ, पहले तुम सेट हो जाओ, फिर बाद में हम भी आ जाएँगे। पैसा तो आता जाता रहता है। आज है, कल नहीं रहेगा तो कल फिर से आ भी जाएगा मगर हमारा ये सुंदर वक्त कभी नहीं लौटने वाला। हमें हर हाल में अपनी इस बची खुची पूँजी के जरिए अपने सपने साकार करने हैं। सुनो, वैसे भी पैसे तो इस्तेमाल के लिए ही तो होते हैं, कोई गाड़ के रखने या सिर पर बिठाने वाली चीज तो हैं नहीं। सो इनके आने जाने का कोई रंजोगम नहीं। चलो, अब यहाँ से निकलो और इन्हें समझदारी से काम में लेना।'

महज ग्यारहवीं पास कर पाई थी सुधा और शादी के झमेले में पड़ते ही पढ़ाई छूट गई इसकी, मगर कितनी समझदार और खुद्दारी भरी बातें करना जानती हैं ये तो। खुशी से सराबोर उसका मन ऐसे खिल उठा जैसे अकाल में पानी बरसने लगा हो। उसके मुर्दा पैरों में जैसे नए पंख लग गए हों। आहिस्ते से सड़क पार करके जल्दी से जल्दी ट्रेन पकड़कर दूर, कहीं दूर जाना होगा उसे, एक नई मंजिल की तलाश में। पहले अपने पैर जमा लूँ फिर जल्दी ही सुधा को भी ले जाऊँगा। उस बेशकीमती पोटली को आहिस्ते से बगल में दबाए उसके बड़े-बड़े सधे कदम तेजी से सड़क पार करते आगे बढ़ते जा रहे थे।

https://www.hindiadda.com/potali/